इकाई 4 नाट्यशास्त्रीय पारिभाषिक शब्द – भाग 1

इकाई की रूपरेखा

4.0 उद्देश्य

4.1 प्रस्तावना

4.2 नाट्यशास्त्रीय पारिभाषिक शब्द

- 4.2.1 नाटक इतिवृत्त (कथानक)
- 4.2.2 नायक
- 4.2.3 नायिका
- 4.2.4 पूर्वरङ्ग
- 4.2.5 नान्दी

4.3 सारांश

4.4 शब्दावली

4.5 कुछ उपयोगी पुस्तकें

4.6 बोध/अभ्यास प्रश्नों के उत्तर

4.0 उद्देश्य

इस इकाई के अध्ययन के पश्चात् आप –

- नाटक के प्रमुख पात्र नायक नायिकादि के स्वरूप के बारे में समझ सकेंगे।
- नाटक का पाठन या मंचन करते समय उसमें प्रयुक्त होने वाले पारिभाषिक शब्दों को समझ सकेंगे।
- नाटक की कथावस्तु (विषय-वस्तु) का चयन किस प्रकार होता है, इसका ज्ञान प्राप्त कर सकेंगे।
- इन बिन्दुओं के अध्ययन के माध्यम से दृश्य-विधा नाटक का स्वरूप समझ सकेंगे।

4.1 प्रस्तावना

प्रिय छात्रों! 'संस्कृत नाटक' के इस पाठ्यक्रम में आपने नाटकों की उत्पत्ति और विकास, रूपक भेद एवं प्रमुख नाटककारों के विषय में अध्ययन किया। आप जानते हैं कि नाटक दर्शकों के समक्ष प्रस्तुत किया जाता है इसलिए नाटक को दृश्य काव्य कहा जाता है। इसे अभिनय भी कहते हैं। भरतमुनि प्रणीत 'नाट्यशास्त्र' को नाट्यशास्त्र का प्राचीनतम ग्रन्थ माना जाता है। धनंजय प्रणीत 'दशरूपक' भी नाट्यशास्त्र का महत्त्वपूर्ण ग्रन्थ है। डॉ. भोलाशंकर व्यास लिखते हैं कि ''जहाँ काव्य में निबद्ध या वर्णित धीरोदात्तादि नायक तथा तत्प्रकृतिगत नायिका और अन्य पात्र द्वारा आङ्गिकादि अभिनयों के द्वारा अवस्थानुकरण किया जाता है, वह नाट्य है।''

भरतमुनि के 'नाट्यशास्त्र', धनंजय प्रणीत 'दशरूपक', विश्वनाथ प्रणीत 'साहित्यदर्पण' आदि ग्रन्थों में नाटक के तत्त्वों पर प्रकाश डाला गया है। आप जानते हैं कि रूपक के दशविध भेद होते हैं, उन भेदों में इतिवृत्त, नायक, नायिका आदि की प्रधानता होती है। इस इकाई के माध्यम से आप इतिवृत्त, नायक एवं नायिका भेद, पूर्वरङ्ग तथा नान्दी के विषय में अध्ययन करेंगे।

4.2 नाट्यशास्त्रीय पारिभाषिक शब्द

प्रिय छात्रों! नाट्यशास्त्रीय पारिभाषिक शब्दों से सम्बन्धित इकाई के इस अंश में आप नाटक के इतिवृत्त, नायक, नायिका, पूर्वरङ्ग तथा नान्दी का अध्ययन करेंगे।

4.2.1 नाटक इतिवृत्त (कथानक)

कथावस्तु नाटक का एक कविकल्पित शरीर है। धनंजय ने दशरूपक के प्रथम प्रकाश के अन्त में रूपक को **''नेतृरसानुगुण्या कथा''** कहकर सम्बोधित किया है। रस प्रधान है, रस और नायक के अनुकूल ही कथा की रचना की जाती है। रूपककार अपने रूपक के लिए कथा या तो रामायण-महाभारत और इतिहास प्रसिद्ध ग्रन्थों से ग्रहण करता है या कल्पना का आश्रय लेकर कल्पित कथा की रचना करता है। नाट्य तथा अभिनय के ज्ञाता इसे इतिवृत्त भी कहते हैं। नायकादि का चरित्र-वर्णन भी इतिवृत्त कहा जाता है।

नाटक में वर्णित कथानक 'वस्तु' अर्थात् 'कथावस्तु' कही जाती है। इस कथावस्तु का क्षेत्र अत्यन्त विस्तृत है। नाटक में लोक की अवस्थाओं का अनुकरण किया जाता है। ये अवस्थायें भिन्न-भिन्न प्रकार की होती हैं परन्तु सबसे अधिक हमारी दृष्टि सुखात्मक और दुःखात्मक रूपों पर पड़ती है। नाटक में इन दोनों अवस्थाओं का समान महत्त्व है और इनका चित्रण किया जाता है। रूपकों का प्रथम भेदक धर्म 'वस्तु' ही है। इस वस्तु के ही कथावस्तु इतिवृत्त, प्लाट (Plot) आदि नाम हैं। साहित्य के लक्षण ग्रन्थों में वस्तु दो प्रकार की निर्दिष्ट की गई है – **वस्तु च द्विधा** (दशरूपक– प्रथम प्रकाश)

नाटक के संघटक तत्त्वों के निरूपण के सन्दर्भ में धनंजय स्पष्ट रूप से कहते हैं कि – **वस्तुनेता रसस्तेषां भेदकः** –

तत्राधिकारिकं मुख्यमङ्गं प्रासङ्गिकं विदुः।। (दशरूपक– 1/11)

वस्तु (कथावस्तु), नेता (नायक) एवं रस – ये तीन नाटक के प्रमुख भेदक तत्त्व हैं। कथावस्तु का सम्बन्ध पात्रों और दर्शकों से होता है इसलिए कथावस्तु का वर्गीकरण भी पात्र और दर्शक की दृष्टि से भी सम्भव हो सकता है। कथावस्तु दो प्रकार की होती है – मुख्य कथा और प्रासङ्गिक कथा। मुख्य कथा को ही आधिकारिक कथावस्तु कहा जाता है। सहायक कथा प्रासङ्गिक कथावस्तु कही जाती है।

आधिकारिक कथावस्तु – प्रधानभूत कथा को 'आधिकारिक कथावस्तु' कहते हैं। नाटक के फल पर स्वामित्व प्राप्त करना अधिकार कहलाता है तथा उस फल के स्वामी को अधिकारी कहा जाता है। नाटक का फल ही अधिकार है और उस फल का भोक्ता अर्थात् नायक अधिकारी कहलाता है। अधिकार उसे कहते हैं जहाँ फल के साथ स्वस्वामिभाव सम्बन्ध हो। फल का स्वामी ही अधिकारी कहलाता है। उस अधिकार या अधिकारी के द्वारा निवृत्त या फल-प्राप्ति तक ले जाया गया इतिवृत्त ही

आधिकारिक इतिवृत्त होता है। यह नाटकादि रूपकों में मुख्य कथावस्तु होती है। यह नाटक के प्रारम्भ से चल कर अन्त तक जाती है। इसका फल भोक्ता नायक होता है।

कहने का तात्पर्य यह है नायक का फल के साथ स्वस्वामिभाव सम्बन्ध नामक अधिकार होता है और फल का वह ही स्वामी होता है। उसी कथा को फल-प्राप्ति तक ले जाने वाली कथा आधिकारिक कथा कहलाती है।

अधिकारः फलस्वाम्यमधिकारी च तत्प्रभुः।
तन्निर्वृत्तमभिव्यापि वृत्तं स्यादाधिकारिकम्।। (दशरूपक– 1/12)

प्रासङ्गिक कथावस्तु – जो कथावस्तु या इतिवृत्त दूसरे अर्थात् मुख्य कथावस्तु के लिए निर्मित होता है किन्तु प्रसङ्गवश जिसका अपना प्रयोजन भी सिद्ध हो जाता है वह प्रासङ्गिक कथावस्तु कहलाती है –

प्रासङ्गिकं परार्थस्य स्वार्थो यस्य प्रसङ्गतः।
सानुबन्धं पताकाख्यं प्रकरी च प्रदेशभाक्।। (दशरूपक– 1/13)

जो कथावस्तु दूसरे अर्थात् आधिकारिक कथावस्तु के प्रयोजन की सिद्धि के लिए होती है किन्तु प्रसङ्गवश वह अपने प्रयोजन को भी सिद्ध करती है, वह प्रासङ्गिक इतिवृत्त कहलाता है। प्रासङ्गिक कथावस्तु मुख्य कथावस्तु अर्थात् आधिकारिक कथावस्तु के फल प्राप्ति तक पहुँचाने में सहायक का कार्य करती है। प्रासङ्गिक कथावस्तु से तात्पर्य है – प्रसङ्गवश निष्पन्न होने वाली कथावस्तु, जैसे – रामायण में सुग्रीव की कथा। प्रासङ्गिक कथावस्तु दो प्रकार की होती है – पताका एवं प्रकरी।

पताका – **''सानुबन्धं पताकाख्यम्''** जो कथा रूपक में आधिकारिक कथा के समानान्तर दूर तक चलती है, वह सानुबन्ध होती है, उसे पताका कहा जाता है। इस पताका कथावस्तु का नायक भी अलग होता है जो आधिकारिक कथावस्तु का सहायक होता है। यह मुख्यनायक से गुणों में भी न्यून होता है, जैसे – रामायण में सुग्रीव की कथा में सुग्रीव।

प्रकरी – **''प्रकरी च प्रदेशभाक्''** जो कथावस्तु अल्पकाल के लिए आधिकारिक कथा के साथ चलती है वह प्रकरी कहलाती है, जैसे – रामायण में श्रवरी (शबरी) की कथा। प्रकरी कथा में नायक का कोई अपना स्वार्थ नहीं होता। अनुबन्धहीन होने से यह कथा थोड़ी दूर ही चलती है। इस प्रकार की कथा का अपना कोई प्रयोजन नहीं होता है। यह प्रमुख नायक के चरित्र की उत्कर्षता को अभिव्यक्त करती है। यह प्रधान कथा की उपकारिका है, जैसे – जटायु की कथा – यह कथा सीता के विषय में किंचित् जानकारी देती है, जिससे प्रधान कथा का उपकार हो जाता है।

इस प्रकार ये दोनों पताका और प्रकरी कथायें आधिकारिक कथावस्तु को गतिशील बनाने में अपना योगदान देतीं हैं। इस प्रकार कथावस्तु के तीन प्रकार हैं – आधिकारिक, पताका एवं प्रकरी। पुनः ये तीनों भेद – प्रख्यात, उत्पाद्य और मिश्र से तीन-तीन होते हैं –

प्रख्यातोत्पाद्यमिश्रत्वभेदात्त्रेधापि तत्त्रिधा।
प्रख्यातमितिहासादेरुत्पाद्यं कविकल्पितम्।। (दशरूपक– 1/15)

प्रख्यात – जो कथावस्तु ऐतिहासिक होती है वह प्रख्यात कहलाती है, जैसे – मुद्राराक्षस की कथावस्तु।

उत्पाद्य – जो इतिवृत्त उत्पाद्य होता है अर्थात् नाट्यकार अपनी कल्पना को ग्रहण कर रूपक की रचना करता है वह उत्पाद्य है।

मिश्र – जिसमें कुछ अंश इतिहास का और कुछ अंश कवि-कल्पना से मिश्रित हो वह कथावस्तु मिश्र कथावस्तु कहलाती है, जैसे – अभिज्ञानशाकुन्तलम्।

उपर्युक्त वर्णित कथावस्तु दिव्य, मर्त्य तथा दिव्यादिव्य भेद से अनेक प्रकार की होती हैं।

दिव्य – जिस नाटक में नायक देवता होता है वह दिव्य कथावस्तु होती है, जैसे – श्रीकृष्ण।

दिव्यादिव्य – दिव्यादिव्य में नायक देवतावतारी मनुष्य होता है, जैसे – श्रीराम।

मर्त्य – मानव रूप में जो पात्र नाटक रूप में वर्णित होता है वह मर्त्य कोटि की कथावस्तु है, जैसे – दुष्यन्तादि।

4.2.2 नायक

'नी' धातु से 'ण्वुल्' प्रत्यय के योग से नायक शब्द निष्पन्न होता है जिसका अर्थ है – नेता, प्रधान आदि। **'नयति प्रापयतीति नायक'** इस व्युत्पत्तिगत अर्थ के आधार पर 'नी' धातु का अर्थ होता है – ले जाना, ले चलना, पहुँचाना इत्यादि। इस प्रकार 'नायक' शब्द का अर्थ हुआ – जो कथावस्तु को फलप्राप्ति की ओर ले जाता है।

विभावादि द्वारा सहृदय के हृदय में अभिव्यक्त रत्यादि स्थायीभाव ही रस है। विभाव दो प्रकार के होते हैं – आलम्बन एवं उद्दीपन। आलम्बन विभाव के द्वारा ही रस का संचार होता है, जो नाटक में नायक, नायकादि के माध्यम से होता है। संस्कृत साहित्य में नायक का विवेचन भरत से लेकर विश्वनाथ आदि आचार्यों ने किया है। साहित्यदर्पण के अनुसार नायक का लक्षण इस प्रकार है –

त्यागी कृती कुलीनः सुश्रीको रूपयौवनोत्साही।
दक्षोऽनुरक्तलोकस्तेजोवैदग्ध्यशीलवान्नेता।। (सा0 द0–3/30)

दाता (त्यागी), कृतज्ञ, पण्डित, कुलीन, लक्ष्मीवान्, लोगों के अनुराग का पात्र रूपयौवन और उत्साह से युक्त तेजस्वी चतुर और सुशील पुरुष काव्यों में नायक होता है।

दशरूपककार के अनुसार –

नेता विनीतो मधुरस्त्यागी दक्षः प्रियंवदः।
रक्तलोकः शुचिर्वाग्मी रूढवंशः स्थिरो युवा।।
बुद्ध्युत्साहस्मृतिप्रज्ञाकलामानसमन्वितः।
शूरोदृढश्च तेजस्वी शास्त्रचक्षुश्च धार्मिकः।।(दशरूपक– 2/1-2)

दशरूपककार धनंजय के अनुसार – ''नाटक का नायक विनीत, मधुर, त्यागी, दक्ष, प्रियंवद, लोकप्रिय, वाग्मी, प्रख्यात, कुलीन, स्थिर एवं कलावान् होना आवश्यक है। यह बुद्धि, उत्साह, प्रजा, स्मृति इत्यादि की समृद्धि से समन्वित तथा शूर, दृढ़, तेजस्वी,

शास्त्रदृष्टिवाला एवं धार्मिक भी होता है।'' नाटक का नायक प्रख्यातवंश का राजर्षि धीरोदात्त, प्रतापी, दिव्य (कृष्णवत्) अथवा दिव्यादिव्य (रामादिवत्) होना चाहिए।

नायक के भेद-प्रभेद के सन्दर्भ में आचार्यों का दो दृष्टिकोण है – (1) काव्यशास्त्रीय दृष्टिकोण एवं (2) नाट्यशास्त्रीय दृष्टिकोण।

नाट्यशास्त्रीय दृष्टिकोण से भरतमुनि ने नायक के चार प्रकार माने हैं – (1) धीरोदात्त (2) धीरोद्धत (3) धीरललित तथा (4) धीरप्रशान्त।

साहित्यदर्पणकार विश्वनाथ ने भी नायक के मुख्यतया चार भेद माने हैं –

धीरोदात्तो धीरोद्धतस्तथा धीरललितश्च।
धीरप्रशान्त इत्ययमुक्तः प्रथमश्चतुर्भेदः।। (सा0 द0–3/31)

1) **धीरोदात्त नायक** – साहित्यदर्पण में आचार्य विश्वनाथ ने धीरोदात्त नायक को इस प्रकार परिभाषित किया है –

अविकत्थनः क्षमावानतिगम्भीरो महासत्त्वः।
स्थेयान्निगूढमानो धीरोदात्तो दृढव्रतः कथितः।। (सा0 द0–3/32)

धीरोदात्त नायक अपनी प्रशंसा स्वयं न करने वाला, क्षमावान्, अतिगम्भीर, महासत्त्व, स्थिर प्रकृति वाला, प्रच्छन्न मान वाला, सत्यप्रतिज्ञ स्वभाव वाला होता है। हर्ष एवं शोक से जिसका चित्त अभिभूत नहीं होता, विनय से प्रच्छन्न गर्व वाला, स्वीकार की हुई बात का निर्वाह करने वाला नायक 'धीरोदात्त' कहा जाता है।

धीरोदात्त नायक राजकुलोत्पन्न होता है। धीरोदात्त नायक सभी आदर्शों से युक्त होता है। राम एवं दुष्यन्त इसी कोटि के नायकों की श्रेणी में आते हैं। रचनाकार को नायक की धीरोदात्तता बनाए रखने के लिए सुप्रसिद्ध ऐतिहासिक कथानक में भी कुछ परिवर्तन करना पड़ता है।

दशरूपककार के अनुसार धीरोदात्त नायक कुछ इस प्रकार का होता है –

महासत्त्वोऽतिगम्भीरः क्षमावानविकत्थनः।
स्थिरो निगूढाहंकारो धीरोदात्तो दृढव्रतः।। (दशरूपक– 2/4)

2) **धीरोद्धत नायक** – साहित्यदर्पण में आचार्य विश्वनाथ ने धीरोद्धत नायक को इस प्रकार परिभाषित किया है –

मायापरः प्रचण्डश्चपलोऽहंकारदर्पभूयिष्ठः
आत्मश्लाघानिरतो धीरैर्धीरोद्धतः कथितः।। (सा0 द0– 3/33)

मायावी, प्रचण्ड, चपल, घमण्डी, शूर, अपनी तारीफ करने वाला नायक धीरोद्धत कहा जाता है।

दशरूपककार धनंजय ने धीरोद्धत नायक को इस प्रकार परिभाषित किया है –

दर्पमात्सर्यभूयिष्ठो मायाच्छद्मपरायणः।
धीरोद्धतस्त्वहंकारी चलश्चण्डो विकत्थनः।। (दशरूपक– 2/5)

धीरोद्धत प्रकृति का नायक दर्प तथा मात्सर्य से युक्त होता है। यह माया-छल आदि में लिप्त रहता है। इस प्रकार का नायक धीरोदात्त प्रकार के नायक के स्वभाव के विपरीत होता है। यह दूसरे की समृद्धि को सहन नहीं कर पाता। इसमें प्रतिनायक के भी गुण पाए जाते हैं। वेणीसंहार का नायक भीम इसी कोटि का नायक है।

3) **धीरललित नायक** – साहित्यदर्पण में आचार्य विश्वनाथ ने धीरललित नायक को इस प्रकार परिभाषित किया है –

निश्चिन्तो मृदुरनिशं कलापरो धीरललितः स्यात्। (सा0 द0–3/34)

निश्चिन्त अतिकोमल स्वभाव वाला सदा नृत्यगीतादि कलाओं में प्रसक्त नायक 'धीरललित' प्रकार का नायक होता है।

धीरललित नायक राजकाज की चिन्ताओं से रहित, संगीत, नृत्य, चित्रकला आदि ललित कलाओं में आसक्त तथा रसिक वृत्ति वाला होता है। नायक प्रसिद्ध राजा होता है और प्रेम करना उसका मुख्य कार्य होता है। वह अनेक प्रेमिकाओं (नायिकाओं) से युक्त होता है तथा उसे राज्य-कर्म का भी कोई भार नहीं संभालना पड़ता है। रत्नावली का नायक उदयन धीरललित कोटि का नायक है।

धनंजय ने धीरललित नायक का लक्षण इस प्रकार बताया है –

निश्चिन्तो धीरललितः कलासक्तः सुखी मृदुः। (दशरूपक–2/3)

4) **धीरप्रशान्त नायक** – साहित्यदर्पण में आचार्य विश्वनाथ ने धीरप्रशान्त नायक को इस प्रकार परिभाषित किया है –

सामान्यगुणैर्भूयान् द्विजादिको धीरप्रशान्तः स्यात्। (सा0 द0–3/34)

त्यागादि सामान्यगुणों से युक्त ब्राह्मणादि नायक 'धीरप्रशान्त' कोटि का नायक होता है। धीरप्रशान्त नायक धीरललित नायक से धीरता के गुण के अतिरिक्त सर्वथा पृथक् होता है। यह नायक शान्तप्रकृति का ब्राह्मण या वैश्य जाति में उत्पन्न होता है। इसमें विनम्रतादि गुण अन्य नायकों की तरह ही विद्यमान रहते हैं। प्रकरण नामक रूपक का नायक धीरप्रशान्त कोटि का होता है तथापि प्रकरण का नायक निश्चिन्तता और कलाप्रियता आदि गुणों से युक्त होता है। मृच्छकटिकम् का नायक चारुदत्त धीरप्रशान्त कोटि का नायक है।

सामान्यगुणयुक्तस्तु धीरशान्तो द्विजादिकः। (दशरूपक– 2/4)

धीरोदात्तादि चारों प्रकार के नायक दक्षिण, धृष्ट, अनुकूल और शठ इन चार भेदों में विभक्त होते हैं। इस प्रकार चार भेद होने से नायक सोलह प्रकार के होते हैं –

एभिर्दक्षिणधृष्टानुकूलशठरूपिभिस्तु षोडशधा। (सा0 द0–3/35)

क) **दक्षिण नायक** – एक से अधिक पत्नियों में समान अनुराग रखने वाले नायक को दक्षिण नायक कहते हैं। जैसे – स्वप्नवासवदत्तम् नाटक का नायक 'उदयन'।

एषु त्वनेकमहिलासु समरागो दक्षिणः कथितः। (सा0 द0–3/35)

ख) **धृष्ट नायक** – धृष्ट नायक वह होता है जो निःशंक भाव से अपराध पर अपराध करके भी लज्जित नहीं होता, भर्त्सना करने पर प्रभावित नहीं होता और झूठ बोलकर अपने अपराध छिपाने का प्रयत्न करता है।

कृतागा अपि निःशङ्कस्तर्जितोऽपि न लज्जितः।
दृष्टदोषोऽपि मिथ्यावाक्कथितो धृष्टनायकः।। (सा0 द0–3/36)

धृष्टनायक कनिष्ठा नायिका के प्रति अनुराग में आसक्त होता है तथा इन्हीं लक्षणों से युक्त होकर ज्येष्ठा के पास रहता है। रत्नावली का नायक उदयन इसका उदाहरण है।

ग) **अनुकूल नायक** – जो नायक एक ही नायिका में अनुरक्त रहे उसे अनुकूल नायक कहते हैं। उत्तररामचरित के नायक राम अनुकूल कोटि के नायक हैं।

घ) **शठ नायक** – शठ नायक वह कहलाता है जो अनुरक्त तो किसी अन्य नायिका में होता है परन्तु अनुराग प्रकृत नायिका में दिखाता है अर्थात् इस कोटि का नायक ज्येष्ठा नायिका से छिपकर कनिष्ठा से प्रेम करता है।

उपर्युक्त सोलह (16) प्रकार के नायक उत्तम, मध्यम एवं अधम इन तीन भेदों से (48) अड़तालीस प्रकार के होते हैं –

एषां च त्रैविध्यादुत्तममध्याधमत्वेन।
उक्ता नायकभेदाश्चत्वारिंशत्तथाष्टौ च।। (सा0 द0–3/38)

4.2.3 नायिका

नायिका का सामान्य अर्थ है – नायक की प्रिया या नायक की पत्नी। नायिका भी नायक के समान गुणसम्पन्न होती है **''स्वान्या साधारणस्त्रीति तद्गुणा नायिका त्रिधा।''**(दशरूपक–2/15)। नायिका नाट्य की प्राणवाहिनी धारा है, जिसमें जीवन का मर्मस्पर्शी मधुर रस प्रवाहित होता है। नायिका की भूमिका नाटक के संविधान में विशेष होती है। नाटकों का सामान्यतया शृंगार रसपरक होने के कारण नायिकाओं की आकृति, प्रकृति, स्वभाव तथा चरित्र आदि के विश्लेषण में विशेष ध्यान दिया जाता है। नायिका को सुख का मूल, कामभाव का आलम्बन, त्रिभुवन के आधाररूप में विवेचित किया गया है। साहित्यदर्पणकार विश्वनाथ ने नायिका के तीन भेद माने हैं –

अथ नायिका त्रिभेदा स्वान्या साधारणास्त्रीति।
नायकसामान्यगुणैर्भवति यथासंभवैर्युक्ता।। (सा0 द0–3/56)

नायिका तीन प्रकार की होती है – अपनी स्त्री, अन्य की स्त्री तथा साधारण स्त्री अर्थात् वेश्या। नायक के बताए गए सामान्य गुणों से ही युक्त नायिका भी होती है। नायिका का भी सम्बन्ध रूपक के फल से रहता है। प्रायः सभी आचार्यों ने तीन प्रकार की नायिकाओं की चर्चा की है परन्तु नाट्यदर्पण में नायिकाओं के चार प्रकार बताए गए हैं –

नायिका, कुलजा, दिव्या, क्षत्रिया, पण्यकामिनी।
अन्तिमा ललितोदात्ता, पूर्वोदात्ता त्रिधापरे।। (ना0 द0–4/172)

भरतमुनि ने नायिकाओं के चार भेद गिनाए हैं – दिव्या, नृपपतिनी, कुलस्त्री और गणिका। परन्तु ये न तो सर्वमान्य हैं और न ही प्रचलित। आचार्यों ने नायिका के

मुख्यतः तीन भेद स्वीकार किए हैं – (1) स्वकीया (2) परकीया (अन्या) और (3) साधारण स्त्री।

1) **स्वकीया नायिका** – विनय, सरलता आदि गुणों से युक्त, घर के कार्यों में निपुण, तत्पर, पतिव्रता स्त्री स्वकीया प्रकार की नायिका होती हैं। स्वकीया नायिका शील तथा सरलता आदि गुणों से युक्त होती हैं। शील का अर्थ है – सुन्दर आचरण। अतः स्वकीया नायिका पतिव्रता, कुटिलता-रहित, लल्जालू तथा पतिसेवा में निपुण होती है। साहित्यदर्पण के अनुसार –

विनयार्जवादियुक्ता गृहकर्मपरा पतिव्रता स्वीया। (सा0 द0–3/57)

दशरूपककार के अनुसार –

मुग्धा मध्या प्रगल्भेति स्वीया शीलार्जवादियुक्। (दशरूपक–2/15)

इस प्रकार की नायिका मुग्धा, मध्या, प्रगल्भा भेद से तीन प्रकार की होती है।

क) **मुग्धा नायिका** – मुग्धा नायिका अवस्था तथा कामवासना में नहीं रहती, रति से वह कतराती है तथा नायक से मानादि में क्रोध करते समय भी वह कोमल स्वभाव से युक्त होती है। दशरूपककार के अनुसार –

मुग्धा नववयःकामा रतौ वामा मृदुः क्रुधि। (दशरूपक–2/16)

ख) **मध्या नायिका** – मध्या प्रकार की नायिका यौवन व कामवासना से युक्त होती है। इस प्रकार की नायिका का मान चिरस्थायी नहीं होता। वह अत्यन्त लज्जा नहीं करती। दशरूपककार के अनुसार –

मध्योद्यद्यौवनानङ्गा मोहान्तसुरतक्षमा।। (दशरूपक–2/16)

यौवन और कामादि का उदय हो रहा हो, जो मूर्च्छा की अवस्थापर्यन्त सुरत में समर्थ हो वह मध्या नायिका होती है। मध्या भी तीन प्रकार की होती है – मध्याधीरा, धीराधीरा एवं अधीरामध्या।

ग) **प्रगल्भा नायिका** – प्रगल्भा प्रकार की नायिका कामान्ध प्रकार की होती है। इस प्रकार की नायिका ढीठ तथा लज्जारहित प्रकार की होती है। वह नायक को व्यङ्ग्युक्त वचनों से बेंध देती है। नायक का अपराध होने पर वह उसे प्रेम में सहयोग नहीं देती। दशरूपककार के अनुसार –

यौवनान्धा स्मरोन्मत्ता प्रगल्भा दयिताङ्गके।
विलीयमानेवानन्दाद्रतारम्भेऽप्यचेतना।। (दशरूपक–2/18)

2) **परकीया नायिका (अन्या)** – परकीया नायिका स्वपरिणीता पत्नी नहीं होती। यह दो प्रकार की हो सकती है – एक अन्य की विवाहिता, दूसरी अविवाहिता (कन्या)। अविवाहिता नायिका पिता आदि के वशीभूत होने के कारण परकीया कही जाती है। आचार्य विश्वनाथ के अनुसार –

परकीया द्विधा प्रोक्ता परोढा कन्यका तथा। (सा0 द0–3/66)

किसी अन्य नायक की विवाहिता स्त्री अन्योढा (परोढा) कहलाती है। परोढा वह है जो यात्राभिलाषिणी कुलटा और लज्जाहीन होती है। कन्या पिता के अधीन रहने के कारण परकीया कही जाती है। दशरूपककार के अनुसार –

अन्यस्त्री कन्यकोढा च नान्योढाऽङ्गिरसे क्वचित्।
कन्यानुरागमिच्छातः कुर्यादङ्गाङ्गिसंश्रयम्।। (दशरूपक–2/20-21)

कन्या 'कनी दीप्तौ' से निष्पन्न है। वह नवयुवती, लल्जाशील और अविवाहित होने के कारण नायक के हृदय को दीप्त करती है। इसमें मुग्धा की चेष्टायें पायी जाती हैं। मालतीमाधव की नायिका इस कोटि की नायिका है।

3) **साधारणस्त्री (गणिका)** – तीसरी प्रकार की नायिका साधारण स्त्री है वह गणिका होती है जो कलाचतुर प्रगल्भा तथा धूर्त होती है।

धनंजय के अनुसार –

साधारणस्त्री गणिका कलाप्रागल्भ्यधौर्त्ययुक्। (दशरूपक–2/21)

आचार्य विश्वनाथ के अनुसार –

धीरा कलाप्रगल्भा स्याद्वेश्या सामान्यनायिका। (सा0 द0–3/67)

यह नृत्यगीतादि 64 कलाओं में निपुण होती है। वह निर्गुण पुरुषों से प्रेम करती है और गुणियों में अनुरक्त नहीं होती है। जो छिपकर कामतृप्ति करना चाहते हैं, जिनसे सरलतापूर्वक धन ऐंठा जा सकता है, जो मूर्ख, आजाद, घमण्डी या नपुंसक हैं, ऐसे लोगों से गणिका ठीक वैसे ही प्रेम करती है जैसे वह सचमुच में प्रेमासक्त हो परन्तु ऐसे पुरुष के धनरहित होने पर उसे धक्के मारकर निकलवा देती है। चोर, नपुंसक, मूर्ख, ब्रह्मचारीवेशधारी कामुक पुरुष इसके अनुरागी होते हैं। कभी-कभी धनहीन पुरुष में उनका अनुराग उत्पन्न हो जाता है, जैसे – मृच्छकटिकम् प्रकरण की नायिका वसन्तसेना। इस प्रकार की नायिकाओं की आठ अवस्थायें होती हैं – स्वाधीनपतिका, खण्डिता, अभिसारिकादि।

4.2.4 पूर्वरङ्ग

'पूर्वं रज्यतेऽस्मिन्' इस व्युत्पत्ति के अनुसार पूर्वरङ्ग शब्द का अर्थ होता है, ''जिसमें सामाजिकों को (दर्शकों को) पूर्व में आनन्द की प्राप्ति होती है अर्थात् जहाँ पहले ही दर्शकों को आनन्द की प्राप्ति होता है उसे पूर्वरङ्ग कहते है।''

नाट्यगृह में नाटक प्रारम्भ होने से पूर्व जो औपचारिक क्रियायें अर्थात् नान्दीपाठादि किये जाते हैं उसे पूर्वरङ्ग कहते हैं।

नाट्यशास्त्र के पंचम अध्याय में पूर्वरङ्ग का विधान किया गया है जिसके स्वरूप पर विचार करने पर ऐसा प्रतीत होता है कि पूर्वरङ्ग नाट्यप्रयोग से पूर्व समय की चरमपरीक्षा स्थली है। नाट्यप्रयोग से पूर्व अनेक अनुष्ठानों का विधान किया जाता है जिसमें मुख्य रूप से गीत, वाद्य, नृत्य और पाठ्य आदि का प्रयोग जवनिका के भीतर तथा बाहर किया जाता है जिसका उद्देश्य होता है – उपस्थित सामाजिकों का अनुरंजन तथा प्रयोग परीक्षण करना।

इस प्रायोगिक विधि को पूर्वरङ्ग इसलिए कहा जाता है क्योंकि यह विधि नाट्यप्रयोग विधियाँ प्रस्तुत करने के पूर्व की जाती हैं। अभिनवगुप्त ने भी माना है कि रङ्गमंच पर पूर्व प्रयोग के कारण इसका नाम पूर्वरङ्ग है। धनिक महोदय ने सामाजिकों की परिपुष्टि के कारण इसे पूर्वरङ्ग माना है।

साहित्यदर्पणकार विश्वनाथ के अनुसार पूर्वरङ्ग का प्रयोग विघ्नोपशमनार्थक होता है क्योंकि दैत्यों ने नाटक के समय उपद्रव किया था, तो उपद्रव की रक्षा के लिए रङ्गपूजा की विधि रखी गई थी –

तत्र पूर्वं पूर्वरङ्गः सभापूजा ततः परम्।

कथनं कविसंज्ञादेर्नाटकस्याऽप्यथामुखम्।। (सा0 द0–6/21)

नाट्यदर्पणकार रामचन्द्र एवं गुणचन्द्र के मतानुसार पूर्वरङ्ग का स्वरूप मङ्गलाचरणादि के कारण धार्मिक पक्ष पर बल देता है परन्तु इस पक्ष पर ज्यादा बल न दिया जाए तो यह विशुद्ध नाट्यप्रयोग है। जिस प्रकार तुरी, तन्तु, वेमादि के संयोग से ही पट का निर्माण होता है, उसी प्रकार गीत, वाद्य, पाठ्य, नृत्यादि एक-एक तत्त्वों के संयोग से ही प्रयोक्ता नाट्य को सफल रूप दे सकता है। इसी सफलता की अन्तिम कड़ी पूर्वरङ्ग है जिससे प्रेक्षक, विद्वान् आदि सन्तुष्ट होते हैं।

4.2.5 नान्दी

पूर्वरङ्ग के अनेक अङ्गों में से एक अङ्ग का नाम नान्दी है। नान्दी उसे कहते हैं, जो नाटक के प्रारम्भ में देवता, ब्राह्मण या राजाओं आदि की आर्शीवाद से युक्त स्तुति करता है।

साहित्यदर्पणकार विश्वनाथ के अनुसार –

आशीर्वचनसंयुक्ता स्तुतिर्यस्मात्प्रयुज्यते।
देवद्विजनृपादीनां तस्मान्नान्दीति संज्ञिता।। (सा0 द0–6/24)

आदिभरत के अनुसार –

आशीर्नमस्क्रियारूपः श्लोकः काव्यार्थसूचकः नन्दीतिकथ्यते।

आर्शीवाद और नमस्कार से युक्त श्लोक नान्दी कहलाता है। उसमें काव्य के कथानक का संकेत भी होता है।

ब्राह्मण, देवता राजादिकों की आशीर्वचनयुक्त स्तुति इसमें की जाती है, अतः इसे नान्दी कहते हैं। इससे लोग आनन्दित होते हैं, अतः यह नान्दी है। इसमें मांगल्य वस्तु, शंख, चन्द्र, चक्रवाक और कुमुदादिकों का वर्णन होना चाहिए।

कहने का तात्पर्य यह है कि सभी नर्तक बिना किसी विशेष स्वरूप रचना के मिलकर जो मंगलार्थ स्तुति आदि करते हैं, वह नान्दी कही जाती है। यह नटों का अपना कार्य है और सभी नाटकों में एक समान है। किसी नाटककार को इसके लिए अपने नाटक में विशेष रचना करने की आवश्यकता नहीं होती इसलिए यह अलग से नाटक का अङ्ग नहीं होता।

नान्दी में आठ, दश या बारह पद होने चाहिए। इसमें आशीर्वाद, नमस्कार या कथावस्तु का निर्देश होना चाहिए। चतुर्थांश को पद मानने पर अभिज्ञानशाकुन्तलम् का प्रथम श्लोक चार पाठ वाली नान्दी है। यहाँ पर कथावस्तु का निर्देश है इसलिए यह पत्रावली नान्दी है।

बोध प्रश्न

1) निम्नलिखित प्रश्नों के सही विकल्प पर सही (✓) का निशान लगाइए –

i) 'अभिज्ञानशाकुन्तलम्' नाटक का नायक है –

क) उदयन　　ख) चारुदत्त

ग) माधव　　घ) दुष्यन्त

ii) 'मृच्छकटिक' प्रकरण के नायक की कोटि है –

क) धीरोदात्त　　ख) धीरोद्धत

ग) धीप्रशान्त　　घ) दिव्य

iii) धीरोद्धत कोटि के नायक का लक्षण है –

क) मायावी　　ख) राजर्षि

ग) मृदु　　घ) विनीत

iv) 'रत्नावली' नाटिका के नायक की श्रेणी है –

क) धीरललित　　ख) मर्त्य

ग) धीरोदात्त　　घ) धीरोद्धत

v) 'मृच्छकटिकम्' नामक प्रकरण का नायक है –

क) दुष्यन्त　　ख) चारुदत्त

ग) उदयन　　घ) श्रीकृष्ण

vi) नाटक में 'नान्दी' का प्रयोग होता है –

क) प्रारम्भ में　　ख) मध्य में

ग) अन्त में　　घ) इनमें से कोई नहीं

vii) अभिज्ञानशाकुन्तलम् नाटक की नान्दी पदों की है–

क) एक　　ख) तीन

ग) पाँच　　घ) चार

viii) नाटक में नान्दी के प्रयोग का प्रयोजन है–

क) नाटक में बाधा आना

ख) नायक का परिचय प्रस्तुत करना

ग) नाटक की निर्विघ्न समाप्ति

घ) नाटक की समाप्ति की घोषणा

अभ्यास प्रश्न

1) निम्नलिखित पर टिप्पणी लिखिए –

क) नायक

ख) नायिका

ग) पूर्वरंग

घ) नान्दी

4.3 सारांश

नाट्यकाव्य से तात्पर्य दृश्यकाव्य अथवा रूपक से है जो चक्षु तथा श्रवण दोनों ही इन्द्रियों का विषय होने से श्रव्यकाव्य की अपेक्षा अधिक प्रभावशाली होता है। नाट्यकाव्य का तात्पर्य उस काव्य से है, जो नेत्रों के माध्यम से हमारे हृदय में प्रवेश करते हुए रस का संचार करके सहृदय दर्शकों को आह्लादित कर देता है। नट के द्वारा नायक (रामसीतादि) की अवस्थाओं का अनुकरण किए जाने के कारण रूपक को 'अभिनय' कहा जाता है। नाटक का मुख्य उद्देश्य होता है अभिनय के द्वारा सामाजिकों का मनोरंजन करते हुए रसाभिव्यक्ति करना और ''रामादिवत् प्रवर्तितव्यं न तु रावणादिवत्'' का उपदेश देना।

नाटक मुख्यरूप से वस्तु, नेता एवं रस पर आश्रित होता है। प्रस्तुत इकाई में नाटक के दो प्रमुख स्तम्भों वस्तु एवं नेता पर प्रकाश डाला गया है। वस्तु या कथावस्तु मुख्यरूप से दो प्रकार की होती है – आधिकारिक अर्थात् मुख्य कथावस्तु एवं प्रासङ्गिक अर्थात् अमुख्य कथावस्तु। कथावस्तु के आधार पर ही नायक भी नाट्य में निर्धारित होते हैं। सामान्य रूप से नायक चार प्रकार के माने गए हैं एवं उन्हीं के अनुरूप नायिका भी निर्धारित है। नाटक की वस्तु रचना में कथावस्तु के रूप में दो तत्त्वों, कार्य और चरित्र का समन्वय है। कथावस्तु जहाँ एक ओर जीवन की क्रियाशीलता का रूप है तो दूसरी ओर चरित्र का विकास। इस प्रकार प्रस्तुत इकाई में आपने कथावस्तु, नायक, नायकादि के विषय में अध्ययन किया।

4.4 शब्दावली

इतिवृत्त	–	कथावस्तु
आधिकारिक कथावस्तु	–	मुख्य कथावस्तु
प्रासङ्गिक कथावस्तु	–	अमुख्य कथावस्तु
उपकारिका	–	उपकार (भला) करने वाली
अभिव्यक्त	–	प्रकट
दक्ष	–	निपुण
रक्तलोक	–	सर्वप्रिय
प्रख्यात	–	प्रसिद्ध
परोढा	–	अन्य नायक की विवाहिता स्त्री

4.5 कुछ उपयोगी पुस्तकें

- साहित्यदर्पण– विश्वनाथ, चौखम्बा विद्याभवन, वाराणसी, 1957.
- नाट्यशास्त्र– भरतमुनि, गायकवाड़ ऑरियन्टल सीरीज, बड़ौदा।

- नाट्यशास्त्र–भाग 1 (अनुवाद तथा व्याख्या सहित) मोतीलाल बनारसीदास, दिल्ली, 1963
- भावप्रकाशन– शारदातनय, ऑरियन्टल इंस्टीट्यूट बड़ौदा, 1930
- दशरूपकम्– डॉ0 श्रीनिवास शास्त्री, साहित्य भण्डार, सुभाष बाजार मेरठ–2, वि0स0– 2036, 1969 ई0

4.6 बोध/अभ्यास प्रश्नों के उत्तर

बोध प्रश्न

(i) (घ) दुष्यन्त (ii) (ग) धीरप्रशान्त (iii) (क) मायावी

(iv) (क) धीललित (v) (ख) चारुदत्त (vi) (क) प्रारम्भ में

(vii) (घ) चार (viii) (ग) नाटक की निर्विघ्न समाप्ति

अभ्यास प्रश्न

इन प्रश्नों के उत्तर छात्र स्वयं लिखें।

ignou
THE PEOPLE'S
UNIVERSITY